



## भूमंडलीकरण, बाजार और मीडिया

रजनी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, डॉ. भीमराव अंबेडकर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

### सारांश

भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण ग्लोबलाइजेशन के हिंदी पर्याय हैं। भूमंडलीकरण राष्ट्रों की सीमाओं को तोड़ 'ग्लोबल विलेज' की बात करता है अर्थात् पूरा विश्व एक गांव है। भूमंडलीकरण एक निरंतर चलने वाली आर्थिक प्रक्रिया है जिसमें किसी देश की अर्थव्यवस्था विश्व की अर्थव्यवस्था में मिलकर उसका अंग बन जाती है। सीधे शब्दों में कहा जाए तो भूमंडलीकरण बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपने देश में निवेश करने की अनुमति देना और विदेशी निवेश के लिए द्वार खोल देना है। विद्वानों ने इसे आर्थिक उपनिवेशवाद की संज्ञा भी दी है इसके सांस्कृतिक दुष्प्रभावों को देखते हुए बौद्धिक उपनिवेशवाद के नाम से भी इसे पुकारा है। भूमंडलीकरण मुक्त बाजार व्यवस्था की बात करता है जिसकी संपूर्ण लगाम वर्ल्ड बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन जैसी अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के हाथों में निहित है। भूमंडलीकरण के प्रसार में संचार क्रांति का महत्वपूर्ण स्थान है। उसी के पंखों पर बैठकर इसने विश्व के कोने कोने में अपनी पैठ जमा ली है। बहुराष्ट्रीय निगमों ने अपने उत्पादों की बिक्री के लिए तीसरी दुनिया के देशों को अपना बाजार बनाया। इन बाजारों पर पैठ जमाने के लिए इन्होंने मीडिया (प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक) को अपना हथियार बनाया। विज्ञापनों और और कार्यक्रमों के जरिए एक नई 'उपभोक्ता-संस्कृति' को जन्म दिया जिसमें हर दर्शक और पाठक एक उपभोक्ता है। इस उपभोक्तावादी नजरिए ने जो कि पूरी तरह से बाजार की शक्तियों से परिचालित हैखबरों को सूचना से बदलकर उत्पाद में परिवर्तित कर दिया जिसे बाजार में बिकना है। अतः उसे चटपटे, मसालेदार रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। समाचारों से सूचना, यथा-तथ्यता, गंभीरता और वैचारिकता का क्षरण होने लगा। मीडिया पर पश्चिमी मूल्य हावी होने लगे जिसका दुष्प्रभाव संस्कृति पर पड़ने लगा। बाजारवाद के इस दौर में मीडिया के सामने सबसे बड़ा प्रश्न अपनी विश्वसनीयता और साख बचाए रखने का है। केवल सनसनी परोसकर या टीआरपी बढ़ाकर वह अपने दायित्व बोध से मुक्त नहीं हो सकता।

**मुख्य शब्द:** भूमंडलीकरण, मुक्त बाजार व्यवस्था, बाजारवाद, मीडिया

### प्रस्तावना

भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण ग्लोबलाइजेशन के हिंदी पर्याय हैं। भूमंडलीकरण राष्ट्रों की सीमाओं को तोड़ 'ग्लोबल विलेज' की बात करता है अर्थात् पूरा विश्व

एक गांव है। भूमंडलीकरण एक निरंतर चलने वाली आर्थिक प्रक्रिया है जिसमें किसी देश की अर्थव्यवस्था विश्व की अर्थव्यवस्था में मिलकर उसका अंग बन

जाती है।सीधे शब्दों में कहा जाए तो भूमंडलीकरण बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपने देश में निवेश करने की अनुमति देना और विदेशी निवेश के लिए द्वार खोल देना है।विद्वानों ने इसे आर्थिक उपनिवेशवाद की संज्ञा भी दी है इसके सांस्कृतिक दुष्प्रभावों को देखते हुए बौद्धिक उपनिवेशवाद के नाम से भी इसे पुकारा है। भूमंडलीकरण मुक्त बाजार व्यवस्था की बात करता है जिसकी संपूर्ण लगाम वर्ल्ड बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन जैसी अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के हाथों में निहित है।

भूमंडलीकरण के प्रसार में संचार क्रांति का महत्वपूर्ण स्थान है। उसी के पंखों पर बैठकर इसने विश्व के कोने कोने में अपनी पैठ जमा ली है। बहुराष्ट्रीय निगमों ने अपने उत्पादों की बिक्री के लिए तीसरी दुनिया के देशों को अपना बाजार बनाया। इन बाजारों पर पैठ जमाने के लिए इन्होंने मीडिया (प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक) को अपना हथियार बनाया। विज्ञापनों और और कार्यक्रमों के जरिए एक नई 'उपभोक्ता-संस्कृति'को जन्म दिया जिसमें हर दर्शक और पाठक एक उपभोक्ता है।इस उपभोक्तावादी नजरिए ने जो कि पूरी तरह से बाजार की शक्तियों से परिचालित हैखबरों को सूचना से बदलकर उत्पाद में परिवर्तित कर दिया जिसे बाजार में बिकना है।अतः उसे चटपटे, मसालेदार रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। समाचारों से सूचना,यथा-तथ्यता, गंभीरता और वैचारिकता का क्षरण होने लगा।मीडिया पर पश्चिमी मूल्य हावी होने लगे जिसका दुष्प्रभाव संस्कृति पर पड़ने लगा। बाजारवाद के इस दौर में मीडिया के सामने सबसे बड़ा प्रश्न अपनी विश्वसनीयता और साख बचाए रखने का है। केवल सनसनी परोसकर या टीआरपी बढ़ाकर वह अपने दायित्व से बच नहीं सकता।

**भूमंडलीकरण सामान्यतः** विश्व व्यापार को निर्बाध गति से विस्तार देने की प्रक्रिया है।वह राष्ट्रीय सीमाओं को

तोड़ने की बात करता है क्योंकि उसके अनुसार ये सीमाएं विकास के मार्ग की बाधाएं हैं। भूमंडलीकरण की अवधारणा व्यक्ति को राष्ट्र से काटकर 'विश्व-मानव' में बदलने में विश्वास करती है। भूमंडलीकरण के समर्थन में कहा जाता है कि यह विश्व की अर्थव्यवस्था को दृढ़ता प्रदान करेगा और समूचे विश्व में व्यापार, पूंजी-निवेश,रोजगार और विकास के अवसर बढ़ाएगा तथा इस प्रकार इस आर्थिक सहयोग से एक नए युग का सूत्रपात होगा।इस दृष्टि से भूमंडलीकरण का उदारवादी रूप हमारे सामने आता है। इस उदारवादी व्यवस्था का मूल मंत्र मुक्त बाजार है। यह सरकार के हस्तक्षेप से सख्त परहेज रखती हैं और मुक्त बाजार के जिम्मे ही तमाम राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक फैसले छोड़ देने की पक्षधर है। इस तरह की उन्मुक्त बाजार व्यवस्था का तार्किक परिणाम यही है कि पूरा विश्व एक बाजार हो और बहुराष्ट्रीय निगमों के हाथ में ही असली सत्ता हो। हाल ही के वर्षों में बहुराष्ट्रीय निगमों की सत्ता काफी मजबूत हुई है।"भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में बाजार सबसे महत्वपूर्ण ताकत है।इस बाजार का संचालन विकसित देशों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में होता है और इसमें राष्ट्र राज्य की सीमाएं कोई बहुत ज्यादा अर्थ नहीं रखती बल्कि बाजार की शक्तियों के नफे नुकसान के आधार पर चीजें हो रही हैं। परिणाम स्वरूप बाजार पर राज करने वाली कंपनियों के हाथों में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सारे सूत्र आते जा रहे हैं। यह बहुराष्ट्रीय कंपनियां ही अपने हित में बाजार के नियम कायदे निर्धारित कर रही हैं।"

भूमंडलीकरण एक सतत प्रक्रिया है जिसका उदय नव उदारवाद के रूप में एकदम नहीं हो गया बल्कि इसके बीज द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात पैदा हुई विश्व की अर्थव्यवस्था में छिपे हुए हैं। दूसरे विश्वयुद्ध में आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ जापान, जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन जैसे देशों को भारी आर्थिक क्षति हुई। ऐसे में अमेरिका ही एक

ऐसा राष्ट्र था जिसकी स्थिति काफी हद तक सुदृढ़ थी;लेकिन जिसके विकास का रास्ता तब तक अवरुद्ध था जब तक अन्य राष्ट्रों के आर्थिक तंत्र मजबूत नहीं हो जाते इसलिए इसके लिए यह आवश्यक हो गया कि वह अपने प्रभाव क्षेत्र के पूंजीवादी देशों को वित्तीय सहायता दे। इससे एक तो इन क्षेत्रों में उसके विरुद्ध उठने वाले आंदोलनों में लोगों की रुचि कम होगी दूसरे विश्व में उसका आर्थिक सिक्का भी जमने लगेगा। इन उद्देश्यों के तहत अमेरिका के नेतृत्व में ऐसी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं का गठन किया गया जिसने इन देशों को आर्थिक तबाही से तो उबार लिया लेकिन एक ऐसी व्यवस्था को भी जन्म दिया जिसके तहत तीसरी दुनिया के देशों के बाजार पर शक्तिशाली देशों का वर्चस्व बढ़ने लगा। इससे पहले विश्व में मुक्त व्यापार प्रणाली नहीं थी। प्रत्येक देश ने अपने-अपने घरेलू बाजार और उद्योगों को संरक्षण देने के लिए व्यापारिक प्रतिबंधों की बाधाएं खड़ी की हुई थी। इन व्यापारिक बाधाओं को समाप्त करने और आर्थिक पुनर्निर्माण के उद्देश्य से परिचालित शक्तिशाली पश्चिमी राष्ट्रों ने मिलकर चार प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं- ब्रेटन वुड्स विनिमय दर प्रणाली, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.),विश्व बैंक (वर्ल्ड बैंक),गेट(जी ए टी) -जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड एंड टैरिफ का गठन किया जिसने बिना किसी बाधा के विश्व में मुक्त व्यापार का मार्ग खोल दिया।

**ब्रेटन वुड्स विनिमय दर प्रणाली:** सन 1944 में अमेरिका के न्यू हैम्पशायर के ब्रेटन वुड्स में अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स के नेतृत्व में अनेक राष्ट्रों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए जिनके बीच अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक समझौता हुआ जिसके अंतर्गत पहली बार अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय लेनदेन के संबंध में एक सर्वमान्य कानूनी मसौदे पर विभिन्न देशों के हस्ताक्षर हुए सभी सदस्य देशों की मुद्राओं को अमेरिकी डॉलर और सोने के संदर्भ में मूल्यांकित किया गया अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय बाजार में

डॉलर के बदले सोना दिया और लिया जा सकता था इस तरह डॉलर जो अमेरिकी मुद्रा थी अब अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा बन गया।

**अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष** का उद्देश्य विभिन्न देशों के भुगतान संतुलन में पैदा हुई बाधाओं का उन्मूलन करना था। सदस्य देश अपनी मुद्रा इस कोष में जमा करा देते और बदले में यह कोष सदस्य देशों के भुगतान संतुलन में आई बाधाओं को दूर करने के लिए ऋण देता था। “बाद में यही अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तीसरी दुनिया के लिए गले की हड्डी सिद्ध हुआ क्योंकि उन्हें मानवीय दृष्टिकोण के कारण ऋण की सुविधा नहीं दी गई थी अपितु तीसरी दुनिया के देशों पर कब्जा करने के उद्देश्य से नई टेक्नोलॉजी देने व उन्हें आर्थिक विकास के नाम पर अधिक से अधिक ऋण उपलब्ध कराया गया था ताकि वे ऋण के बोझ तले इस सीमा तक दब जाएं कि उसे चुकाने की स्थिति में ना हों तो उन्हें विवश किया जा सके कि वे विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपने देश में प्रवेश देकर व्यापार करने की छूट दें।”<sup>2</sup>

**विश्व बैंक** का उद्देश्य लंबी अवधि का ऋण प्रदान करना था यह उन परियोजनाओं के लिए कम ब्याज दरों पर ऋण प्रदान करता है जो आर्थिक दृष्टि से लाभ प्रदान करने वाली हो तथा जिन पर निजी क्षेत्रों से ऋण मिलना संभव नहीं होता। किंतु इसका गठन भी संपन्न देशों की पूंजी से हुआ है। ऋण लेने वाले देश ऋण की अदायगी इन देशों को अपने देश के सर्वोत्तम उत्पादन का निर्यात करके करते हैं।

**विश्व व्यापार संगठन** का गठन 1955 में किया गया जिसमें घोषणा की गई कि यह संगठन विश्व अर्थव्यवस्था को मजबूत करेगा और व्यापार, पूंजी निवेश, रोजगार और आय के अधिक से अधिक अवसर पैदा करेगा।

विश्व व्यापार संगठन जिन सिद्धांतों पर आधारित है उन पर दृष्टिपात करना इस संदर्भ में अनिवार्य होगा- “१. राष्ट्रों को अपने व्यापारिक प्रतिबंध कम करने पड़ेंगे।

२.साधारण व्यापारिक प्रतिबंध समान रूप से सभी राष्ट्रों के विरुद्ध लगाए जाने चाहिए या सभी राष्ट्रों को व्यापार के लिए सर्वाधिक अनुकूल राष्ट्र का दर्जा मिलना चाहिए अर्थात् व्यापार में विशेष रियायत देकर किसी राष्ट्र को संरक्षण नहीं देना चाहिए।

३. अगर कोई राष्ट्र शुल्क बढ़ाकर प्रतिबंध खड़ा करता है तो उससे जिन राष्ट्रों को व्यापारिक क्षति होगी, उसकी पूर्ति शुल्क बढ़ाने वाले राष्ट्र को करनी होगी।

४. व्यापारिक मतभेदों या झगड़ों का सलाह या सदस्य देशों के पंच निर्णय से निपटारा होगा।.... उक्त सिद्धांतों पर सहमति बनाकर बड़े राष्ट्रीय सम्मेलन करते रहे। राष्ट्रों के बीच खड़े किए गए शुल्क और कोटा के प्रतिबंधों को उन्होंने धीरे-धीरे कम किया तथा मुक्त बाजार के लिए रास्ते तैयार किए ।<sup>3</sup>

शीत युद्ध के दौरान जहां मुक्त बाजार व्यवस्था पर अनेक प्रश्न चिह्न लग रहे थे अचानक ही यही व्यवस्था कहीं अधिक आर्थिक आवेग के साथ नव उदारवाद के रूप में आ धमकी। नव-उदारवाद के मंसूबों की झलक विश्व व्यापार संगठन के महानिदेशक के इस बयान से मिलती है कि - "अब हम विभिन्न राष्ट्रीय अर्थतंत्रों के बीच बातचीत के कायदे कानून नहीं बना रहे हैं। हम विश्व अर्थतंत्र का संविधान तैयार कर रहे हैं।....विश्व व्यापार संगठन की स्थापना एक नई तरह की राजनीति और एक नए तरह के अर्थशास्त्र की शुरुआत है।"

धीरे-धीरे विश्व बैंक अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, और जनवरी 1955 में गठित विश्व व्यापार संगठन की राष्ट्रीय सरकारों के आंतरिक कामकाज में हस्तक्षेप करने की भूमिका तेजी से बढ़ती चली गई। इसके लिए विश्व व्यापार संगठन ने ऐसी नियम और शर्तें रखी हैं जिनके फलस्वरूप मजबूरन विकासशील देशों को इस मुक्त बाजार व्यवस्था का अंग बनना पड़ा। इसके लिए उदारीकरण की इस प्रक्रिया ने निजीकरण को बढ़ावा दिया जिससे बहुराष्ट्रीय कंपनियां विकासशील देशों को अपना बाजार बना सकें। नव उदारवाद दावा करता है

कि आर्थिक सुधारों के इस युग में तेजी से विकास तभी हो सकता है जबकि सामाजिक क्षेत्रों का निजीकरण कर दिया जाए अर्थात् सरकारी हस्तक्षेप को खत्म कर मानव जीवन को पूरी तरह बाजार की शक्तियों के हवाले कर दिया जाए और मुक्त बाजार व्यवस्था के लिए रास्ते खोल दिए जाएं। "आर्थिक भूमंडलीकरण में बड़े मुद्दों पर फैसला लेने का अधिकार विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के पास आ जाने से राष्ट्रीय सरकारों की संप्रभुता घटी है। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार का अपने नागरिकों के प्रति जवाबदेही का कोई खास मतलब नहीं रह गया।" मुक्त बाजार व्यवस्था उपभोक्ता की सर्वोच्चता का नारा देती है जिसमें गुणवत्ता और कीमत के आधार पर उत्पादकों के बीच स्वस्थ प्रतियोगिता होगी तथा उपभोक्ता के सामने एक ही वस्तु को खरीदने के लिए अनेक विकल्प होंगे। लेकिन इस उपभोक्तावादी संस्कृति में इन कंपनियों की दृष्टि में मनुष्य एक उपभोक्ता है जहां आकर्षक पैकिंग और कम दाम से उपभोक्ता को लुभाया जाता है और गैरजरूरी चीज को भी जरूरी साबित करके उसे खरीदने की ललक पैदा की जाती है। और यह काम विज्ञापनों की जादुई दुनिया के बल पर बखूबी किया जा रहा है। फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय मीडिया कंपनियां विज्ञापन उद्योग के मुताबिक अपने कार्यक्रमों की संरचना करवाती हैं ताकि विज्ञापन उद्योग इन कंपनियों के उत्पादों के लिए ग्राहकों की भीड़ जुटा सके। यही कारण है कि इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मुकाबले घरेलू उत्पाद दम तोड़ रहा है। आज बाजार में वही कंपनियां सफल हो रही हैं जो बिक्री के लिए इनामी योजनाएं रखकर ग्राहक को लुभा रही हैं। कह सकते हैं कि भूमंडलीकरण के विश्व बाजार में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के रूप में शक्तिशाली देशों का वर्चस्व ही बढ़ रहा है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को तेज करने में सूचना-क्रांति प्रमुख भूमिका निभा रही है। संचार क्रांति के परिणामस्वरूप आज एक विश्वव्यापी सूचना नेटवर्क

तैयार हो चुका है। सूचनाओं का विशाल भंडार तैयार हो चुका है। लेकिन इन सूचनाओं पर भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का ही नियंत्रण है, इसका “अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उपग्रहों से जितनी भी जानकारी का आदान-प्रदान होता है उसका 90% हिस्सा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के खाते में जाता है। विश्व में 50% सूचना और आंकड़ों का प्रवाह विभिन्न बहुराष्ट्रीय कंपनियों का होता है। सूचना उद्योग पर चंद्र महाशक्तियों ने अपना नियंत्रण कर लिया है।”<sup>6</sup> सूचना के इस युग में निश्चय ही सूचनाओं का प्रवाह तीव्र हुआ है। प्रश्न उठता है कि क्या यह सूचना लोगों के वास्तविक सरोकारों से पैदा हुई है या शक्तिशालियों को और शक्तिशाली बनाने के लिए बन रही है। इराक-अमेरिका युद्ध के उदाहरण द्वारा इस बात को समझा जा सकता है जब इराक के विरुद्ध अमेरिकी सैनिक कार्यवाही को उचित ठहरा कर मीडिया ने उसी के पक्ष में सूचनाएं प्रसारित की थी। लेकिन इस युद्ध के मानवीय पक्ष की करुण कहानी मीडिया के परदे से लगभग गायब थी। एक उदाहरण सन 2004 में हुए भारत के लोकसभा चुनाव से भी लिया जा सकता है जब मीडिया ने भाजपा सरकार को सबसे अधिक प्रचारित किया और चुनावी विश्लेषण में सरकार के पक्ष में माहौल तैयार किया गया लेकिन चुनावी परिणाम एकदम विपरीत निकला। स्पष्ट है कि उदारिकरण की छाया में मीडिया वैचारिक रूप से पूर्ण स्वतंत्र नहीं है। सत्ता और पूंजी के दबाव उस पर निरंतर बने रहते हैं। बहुराष्ट्रीय सत्ता-तंत्र मीडिया की शक्तियों द्वारा बौद्धिक उपनिवेशवाद की ओर अग्रसर हो रहा है जिसमें लोगों के मस्तिष्क पर नियंत्रण करने का प्रयास किया जा रहा है। सूचना क्रांति ने बड़ी आसानी से विकासशील देशों के अतिरिक्त क्रयशक्ति वाले मध्यवर्गीय तबके को जीतने में सफलता हासिल कर ली है जो सपनों के ऐसे रंगीन संसार में रह रहा है जिसमें वह तमाम समस्याओं का समाधान टीवी के रुपहले पर्दे पर ढूँढता

है लेकिन समाज के अन्य तबकों तथा सामाजिक, सांस्कृतिक सरोकारों से जुड़ी समस्याओं का समाधान करना इसके दायरे में नहीं आता। कंप्यूटर और इंटरनेट के इस विश्वग्राम में तीन चौथाई लोगों के पास तो एक टेलीफोन तक नहीं है। जहां करोड़ों लोग भुखमरी, कुपोषण और अशिक्षा के शिकार हैं उनकी आवाज बनने के लिए यह विश्वव्यापी मीडिया गंगा हो जाता है। आर्थिक उदारिकरण और निजीकरण का लाभ उठाते हुए भूमंडलीय मीडिया कंपनियों ने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है। भूमंडलीय मीडिया के दबाव ने भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के समूचे परिदृश्य में भारी उलटफेर किया है। उसने सूचना और मनोरंजन के इस संसार को मनमोहक मायावी रूप प्रदान कर दिया है। यही नहीं इसने प्रिंट मीडिया को भी अपने प्रभाव से अछूता नहीं छोड़ा है। विदेशी नेटवर्क चैनलों ने भारतीय टेलीविजन को विज्ञापन की लड़ाई का हथियार बना दिया है। बाजार पर किस कंपनी का कितना कब्जा होगा यह विज्ञापन की लड़ाई के जरिए संभव बनाया जा रहा है। ऐसे में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ‘विज्ञापन उद्योग’ के वशीभूत हो कर उपभोक्ता संस्कृति का वाहक बनकर उभरा है। विज्ञापनदाता दर्शकों को एक उपभोक्ता की तरह इस्तेमाल करता है जिसका सारा ध्यान उच्च आय वर्ग वाले उपभोक्ता को आकर्षित करने पर रहता है। वे इस तरह के कार्यक्रम को प्राथमिकता देते हैं जिसमें सेक्स व हिंसा की भरमार होती है जो दर्शकों को आसानी से आकर्षित कर लेते हैं। जो कंपनियां कार्यक्रम की प्रायोजक बनना स्वीकार करती हैं वे विज्ञापन पर पानी की तरह पैसा बहाती हैं। वे उन्हीं कार्यक्रमों की प्रायोजक बनना स्वीकार करती हैं जो दर्शकों में खासे लोकप्रिय हो सके। इसलिए आज हर चैनल पर स्त्री-पुरुष संबंधों, अंधविश्वासों, जादू-टोना, जासूसी, आतंकवाद जैसे मसालों से भरे हुए सीरियल जिनका यथार्थ से कोई लेना-देना नहीं विज्ञापन दाताओं की मांग पर प्रसारित हो रहे हैं। ऐसी प्रस्तुतियां

विज्ञापनदाताओं को भले ही लाभ पहुंचाती हों लेकिन यह भी कटु सत्य है कि इससे संस्कृति की धारा के मैला होने का खतरा भी बढ़ रहा है। आज मीडिया पश्चिमी संस्कृति की धनलोलुपता और कामुकता को अपने कार्यक्रमों में भरपूर स्थान दे रहा है। आज की युवा पीढ़ी पर 'विज्ञापनी-संस्कृति' का असर सबसे ज्यादा है। यह विज्ञापनी-संस्कृति उसके रहन-सहन, जीवन-शैली का आकर्षण बन गई है। उसके मन में भी वैसा ही बनने की लालसा को जगा रही है। विज्ञापनों और कार्यक्रमों की नकल से पली-बढ़ी नई पीढ़ी शराब, कोक, कॉफी, पेप्सी पीकर और अंग्रेजी बोल कर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करती है। आज धारावाहिकों में उच्च जीवन की जो छवि प्रस्तुत की जा रही है उन्हें अपनाने की एक होड़-सी मध्यमवर्गीय तबकों में लगी हुई है। वह उन सब सुख-सुविधाओं को पाना चाहता है जो धारावाहिकों के पात्रों को मिली हुई है। वस्तुतः मीडिया आज नैतिक मूल्यों की कीमत पर पश्चिमी पूंजीवादी मूल्यों को एक प्रतिमान के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। नई मीडिया संस्कृति ने लोगों की परंपरागत जीवन शैली को एक ओर सरकाकर पश्चिमी 'फास्ट फूड' संस्कृति को जन्म दिया है।

बाजारवाद की इस प्रक्रिया में समाचारों के स्वरूप को भी काफी हद तक प्रभावित किया है वह चाहे प्रिंट मीडिया के हों या फिर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के। आज समाचार सूचना नहीं बल्कि उत्पाद है जिसे बाजार में बिकना है। इसलिए उस पर भी वही नियम लागू होते हैं जो एक सामान्य उपभोक्ता बाजार के होते हैं। खबर को बेचने के लिए उसमें मनोरंजन का तत्व डालना पड़ता है अर्थात् खबर चाहे किसी त्रासद घटना से ही क्यों ने जुड़ी हो उसे उस रूप में प्रस्तुत करो कि वह मनोरंजक हो जाए। इन दिनों मीडिया सूचना और मनोरंजन के मिश्रण का खूब इस्तेमाल कर रहा है। समाचारों के व्यापारीकरण से पत्रकारिता के आदर्शों और मानदंडों में आमूलचूल परिवर्तन हुए हैं। आज

मीडिया बाजार की मांगों के अनुरूप ही घटनाएं समाचार बन पाती हैं और दावायह किया जाता है कि उपभोक्ता की ऐसी ही खबरों में रुचि है। लेकिन मीडिया ने इन रुचियों को तोड़ने-मरोड़ने का काम बखूबी किया है। अनेक ऐसी घटनाएं होती हैं जिनमें किसी एक वर्ग की रुचि नहीं होती है लेकिन मीडिया उन्हें ग्लैमराइज करके और एक खास तरह की कवरेज देकर रुचि पैदा करता है। आज मीडिया हर घटना में ग्लैमर की तलाश करता है बलात्कार, हत्या, हिंसा और दुर्घटनाओं जैसी अंदर तक झकझोर देने वाली घटनाएं भी वह ग्लैमर के साथ प्रस्तुत करता है। वास्तव में इनके पीछे व्यापारिक हित ही छिपे होते हैं।

आज अंतर्राष्ट्रीय समाचारों पर तीन नवउदारवादी मीडिया एजेंसियों रायटर और टेलीविजन (ब्रिटिश) एपी और एपीटीवी (अमेरिकी) तथा एएफपी (फ्रांसीसी) और डब्ल्यू टी एन (अमेरिकी-ब्रिटिश) का ही नियंत्रण है। इस नियंत्रण की बदौलत विश्व-भर के मीडिया पर पश्चिमी-मूल्य छाए हुए हैं। इसलिए आज देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्रों में पहले पन्ने पर ऐसी सॉफ्ट स्टोरीज प्रकाशित होना आम बात हो गई है जिनमें सेक्स और हिंसा हो।

सेटेलाइट टेलीविजन ने समाचारों का पूरा परिदृश्य ही बदल डाला। कई मामलों में सकारात्मक परिवर्तन भी हुए हैं। टेलीविजन समाचारों पर से दूरदर्शन का एकाधिकार समाप्त हुआ लेकिन बाजारवाद की होड़ में समाचार चैनलों और प्रिंट मीडिया में गुणवत्ता के आधार पर किसी स्वस्थ प्रतियोगिता का अभाव निरंतर देखने को मिल रहा है। समाचार चैनलों पर तो ऐसा लग रहा है जैसे टीआरपी की होड़ लगी हुई है। अनेक घटनाओं और विषयों पर गंभीर और सार्थक चर्चा के स्थान पर उन्हें चटपटे और मसालेदार रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। ज्वलंत मसलों पर गंभीर बहस में कमी के स्थान पर उनमें सतहीपन आ गया है। यदि मीडिया प्रोग्रामिंग की धारा को देखें तो वह

उपभोक्तावाद की ओर ही प्रबल रूप से उन्मुख हो रही है जिनमें नैतिकता, सामुदायिकता और कलात्मक मूल्यों के लिए स्थान दिनोंदिन घटता जा रहा है जो मानव समाज के लिए एक चुनौती बन गया है।

मीडिया और जनजीवन में जो दूरी बढ़ रही है उससे मीडिया की साख पर भी असर पड़ रहा है। इसलिए यह स्थिति ज्यादा दिनों तक नहीं चलेगी। मीडिया की साख यदि गिरती है तो उसकी प्रभावशीलता कम हो जाती है। प्रभावशीलता के कम होने से व्यापारिक हितों की भी पूर्ति नहीं होती। आज स्वयं अमेरिका में सूचना क्रांति की मदद से जिस तरह भूमंडलीकरण पूंजीवाद और संस्कृति का विश्व भर में निर्यात किया जा रहा है उसके प्रति नकारात्मक रुझान पनपने लगे हैं। एक प्रभावशाली तबका अमेरिका में लोकतंत्र के हास और धनिक तंत्र के हावी होने पर चिंता व्यक्त कर रहा है और इसे आर्थिक तानाशाही करार दे रहा है। भारत जैसे विकासशील देश में यदि मीडिया और जनजीवन के बीच दूरी बढ़ी तो आज जहां जनजीवन उसके दुष्परिणामों को भुगत रहा है कल मीडिया को इस स्थिति के लिए तैयार रहना पड़ेगा। लोगों को सूचित करने और सही जानकारी देने के उत्तरदायित्व की कीमत पर बाजारू दबाव में तात्कालिक व्यापारिक लाभ कमाने का रुझान दीर्घकाल में मीडिया को भारी पड़ेगा। वस्तुतः मुक्त बाजार व्यवस्था में मीडिया पर सत्ता और पूंजी का दबाव पूरी तरह कायम हो चुका है। इस कारण इस उद्योग में सामाजिक तत्व जितना भर भी बचा है वह उसी सीमा तक है जहां तक वह अपनी साख बचाए रखने के लिए जरूरी है। सूचना युग में लोगों को सूचित करने की बजाय मीडिया स्वयं उपभोक्ता, बाजार और उत्पाद के चक्रव्यूह में बुरी तरह फंस गया है इसे वह भेद पाएगा या नहीं, अभी अनिश्चित है क्योंकि भेदने के लिए उससे बाहर निकलने की तड़प का होना भी जरूरी है।

## संदर्भ सूची

1. जनसत्ता (21.12. 2002)लेख--पश्चिमी प्रवाह और पूर्वी प्रतिरोध, राम सुजान अमर
2. भूमंडलीकरण और मीडिया, कुमुद शर्मा, पृ.22, ग्रंथ अकादमी प्रकाशन, संस्करण 2003
3. वही, पृ. 24
4. सूचना क्रांति की राजनीति और विचारधारा, सुभाष धूलिया, पृ. 20, शिल्पी प्रकाशन, संस्करण 2001
5. भारत का भूमंडलीकरण, अभय कुमार दुबे, पृ. 365, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
6. सूचना क्रांति की राजनीति और विचारधारा, सुभाष धूलिया, पृ. 30, शिल्पी प्रकाशन, संस्करण 2001